

प्राचीन भारतीय समाज एवं धर्म की समन्वात्मकभावना के अन्तर्गत वैदिक धर्म एवं बौद्धधर्म

डॉ० श्यामदेव पासवान
संजय गांधी महिला कालेज, गया

अनन्त की महिमा और गरिमा से विभूषित भारत भूमि अपने ऐश्वर्य, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परा में विश्व में विख्यात है। भारतीय संस्कृति समन्वात्मक भावों, का आदर्श असंदिग्ध रूप से भारतीय समाज में वर्ण, धर्म एवं अन्य धर्मों के माध्यम से संचालित होता आ रहा है।

भारतीय समाजिक जीवन चातुर्यवर्ण एवं चातुर्य वर्णाश्रम धर्म पर आधारित था। हिन्दु मान्यताओं के आधार पर यह स्वयं विदित है कि एक स्यक्ति एक ओर संस्कारों के माध्यम से आश्रम धर्म को पालन करता हुआ समाजिकृत होता है, तो दूसरी ओर अपने स्वभाविक गुणों एवं निर्धारित कर्तव्यों से किसी न किसी वर्ण में जीवन यापन भी करता है। वर्ण का संबंध उन समूहों और उसके पारस्परिक संबंधों से है जिनमें अपने स्वाभाविक गुणों एवं विहित कर्मों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को स्थान मिलता है। वर्णानुसार व्यक्ति विशेष का कर्म ही उसका धर्म बन जाता है। फलतः धर्म पर अधिष्ठित वहां एक संरचनात्मक सामाजिक व्यवस्था है। अस्तु आर्यों ने अपने समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्णों की संरचना की है। समाज के शैक्षणिक, धार्मिक कृत्यों में ब्राह्मणव राजकीय कार्यों, देश की रक्षा में क्षत्रिय, आर्थिक उन्नयन में वैश्य तथा वर्णों के सेवा कार्य में शूद्र को अधिकृत किया गया। उनके विहित कर्मों के अनुसार ही उनका स्थान समाजिक स्तर पर निर्धारित हुआ। कालक्रम से यह कर्म अनुवांशिक होने के परिणाम स्वरूप वर्ण व्यवस्था कर्मणा न हो कर जन्मना हो गई।

भारतीय शास्त्रों में, अर्थ, कर्म, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थों का वर्णन मिलता है। जीवनयापन के लिए अर्थ, काम और मोक्ष के लिए धर्म की समुपलविध परस्पर आवन्तित होते हुए मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है। मोक्ष जन्म और मरन के बंधन से विमुक्त होना ही माना गया है। इस मोक्ष की प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न धर्मों में भिन्न-भिन्न साधना बताये गये हैं।

वैदिक परम्पराओं में यज्ञानुष्ठान का इतना महत्व बढ़ गया था कि इसके बिना मनुष्य को न भौतिक सुख एवं मोक्ष प्राप्त हो सकता था। कर्मकाण्ड एवं धार्मिक रूढ़िवादिता, लोगो में इतनी फैल चुकी थी कि धर्म कि समन्वात्मक भावना दब चुकी थी तथा इस परम्परा से लोगों में काफी असंतोष फैल चुका था। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में तत्कालीन समाजिक और धार्मिक रूढ़िवादी परम्परा से लोगो के मध्य काफी असंतोष था। समाज के अनुकूल सुलभ एवं सुविधाजनक ग्रहणशील धर्म की आवश्यकता थी। समाज और धर्म समन्वात्मक भावना में सूत्रबद्ध हो जाए, जिसके माध्यम से जन-जन में शांति एवं स्नेह-स्रोत फूट पड़े। सभी लोगों को सबके लिए चिंता और सबके लिए कर्म करने का एक समन्वात्मक भावना का विकाश हो। समानता का समर्थन करने, समाज संगठन को सुदृढ़ बनाने और उदार प्रवृत्ति को विकासा करने के लिए एक ऐसी धार्मिक समान्वात्मक भावना की आवश्यकता थी।

बौद्ध कालीन भारत में वैदिक युग का समाजिक संगठन एवं उसके रूढ़िगत धार्मिक भावना से जन-जन में एक प्रकार का असंतोष व्याप्त हो गया था और बुद्ध के उपदेशों के साधन साथ समाज और धर्म एक समान्वात्मक भावना से सूत्रबद्ध होता गया।

बौद्ध साहित्य से तत्कालीन वर्ण व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। इस युग में भी समाज का विभाजन चतुर्वर्ण पर आधृत था। ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। यह बात और है कि तत्कालीन जीवन में वर्ण व्यवस्था उँच-नीच की भावना से ग्रस्त हो कर समाज को जर्जरित कर रही थी। यह सत्य है कि उस युग में वर्णों का भेद-भाव अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। उँच-नीच की भावना सबमें घर कर गई थी। विशेष कर ब्राह्मण और क्षत्रिय के बीच यह अन्तर बहुत बढ़ गया था। दोनों के बीच श्रेष्ठता के लिए संघर्ष प्रारम्भ हो चुका था। क्षत्रिय वर्ण का स्थान समाज में दूसरा रहा था, किन्तु बौद्ध युग में उसने अपना प्रमुख स्थान बना लिया, अन्य वर्णों के साथ उसका उल्लेख सर्वप्रथम हुआ है। तत्कालीन सारा सामाजिक संघर्ष श्रेष्ठता प्राप्त करने का था। जिसमें क्षत्रिय वर्ण अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की थी। वैश्य वर्ण उस युग का अत्यन्त समृद्धशाली और सम्पन्न वर्ग था। "सेठिढ" अथवा "सेठ" (बड़े व्यापारी) के साथ-साथ बैंक पति और "सार्थवाह" भी था। सार्थवाह "दूरस्थ प्रदेशों की यात्रा करते हुए व्यापार भी करते थे। काफिलों के साथ वे पश्चिम से पूर्व और पूर्व से पश्चिम की ओर सामग्री के आदान-प्रदान के लिए जाते थे। युद्ध की अवस्था प्राचीनकाल से ही दयनीय रही है। उस

युग मे भी वह अत्यन्त निम्न और हेय माना जाता था समाज मे वह निम्न श्रेणी का सदस्य माना जाता था। उसका प्रधान कार्य सेवा करना ही था।

कुल मिलाकर यही आभास मिलता है कि तत्कालीन समाज में जाति व्यवस्था का काफी प्रचलन था। चाण्डाल आदी कुछ जातियों का रहन-सहन निम्न कोटी का होने के कारण इस समय अस्पृश्यता का भी उदय होने लगा था। हीन जातियां इस जाति व्यवस्था का ही अंग थी।

अस्पृश्यता की भावना दिनो-दिन गहरी जड़े जमाने लगी थी। ब्राह्मण तथा उच्च जाति के लोग चाण्डालो से बच कर रहते थे। यदि कोई चाण्डाल सामने पड़ जाता था तो उसको पीटा जाता था। जातको मे इस प्रकार के अनेको उदाहरणों के उल्लेख मिलता है। बौद्ध धर्म के प्रसार इस स्थिति का खण्डन किया जा रहा था। यह प्रचार किया जा रहा था कि कर्म यदि उच्च हो तो जाति कि हीनता धर्म प्राप्ति मे बाधक नही होती। ब्राह्मणों की सर्वोच्चता को भी चुनौती दी जा रही थी। वर्ण क्रम में ब्राह्मणों से क्षत्रियों को उंचा माना जाने लगा था।

वैदिक वर्णाश्रम धर्म कर्म काण्ड का प्रभाव इन समाज पर काफी था। ब्राह्मण वर्ण समाज का अध्यात्मिक नेता था। वेलोग, शील, सदाचार तथा तपस्या को ही अपना सर्वस्व मानते थे। पर धीरे-धीरे ब्राह्मण लोगों के पास भी सम्पती का अधिवास होने लगे। बड़ी-बड़ी जमीन ब्राह्मण रखने वाले, बड़े-बड़े मकान वाले भोग-विलासी ब्राह्मणों के परिवार भी थे। इन्हे देखकर बुद्ध को इन तपस्वी ब्राह्मणों के प्राचीन गोरव की स्मृति हो आई थी। ब्राह्मणों के पास न पशु था, न धन और न धान्य। स्व अध्याय पठन-पाठन ही उनका धन था। वेलोग ब्रह्मनिधि खजानो की रक्षा मे लीन रहते थे। इस सदाचार का फल भी प्राप्त होता था। वे अवध्य थे, अजेय थे, धर्म से संरक्षित थे। बड़े आदमियों के दरवाजो में प्रवेश करने से उन्हे कोई नही रोकता था।

सुत्तनापात के "ब्राह्मणों के सदाचार, शील तथा तपस्या का वर्णन भगवान बुद्ध ने अपने श्रीमुख से प्रशस्त रूप से किया है। क्षत्रियों के योग, ऐश्वर्य को देखकर उनके सहवास से ब्रह्मणों मे भी भोग लिपसा जागृत हुई, परन्तु त्यागी ब्राह्मणों की कमी बुद्ध युग नही थी। जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए तथा समाज के कल्याण के वे सदा वद्वपरिकर थे। पर समय की बुराईयां उन्हे भी छूती जा रही थी। उनका भी चित निवृत्ति से हटकर प्रवृत्ति की ओर

चलायमान था। स्वाध्याय की ओर उनकी शिथिलता होने लगी। आध्यात्मिक नेताओं की बुराईयों से समाज उच्छ्वंखल होने लगा।

बौद्ध धर्म विश्व की महनीय धर्मों में अन्यतम है। भगवान बुद्ध इसी भारत भूमि से अवतीर्ण हुए थे। वे संसार की दिव्य विभूति थे। महामहिमाशाली गुणों से वे विभूषित थे। उन्होंने समय की परिस्थिति के अनुरूप जिस धर्म चक्रप्रवर्तन किया, वह इतना सजीव, इतना व्यवहारिक तथा इतना मंगलमय था कि आज अढ़ाई हजार वर्षों के अन्तर के बाद भी उसका प्रभाव मानव समाज पर कम नहीं हुआ है। बौद्ध धर्म ने करोड़ों प्राणियों मंगलसाधन किया है और आज भी वह उनके आत्यन्तिक कल्याण की साधना में लगा हुआ है। पाश्यातृण जगत के चिंतनशील व्यक्तियों पर इस धर्म तथा दर्शन महत्वपूर्ण प्रभाव पूर्वकाल में पड़ा है और आज भी पड़ रहा है।

बुद्ध ने सम्यक सम्बंधी परम उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त कर लेने पर जिस चार उत्तम सत्यों को खोज निकाला उनमें पहला सत्य है दुःख। बुद्ध ने दुःख के समुदाय (कारण) तथा दुःख के निरोध (निर्वाण) को बतलाकर इस दुःख निरोध के मार्ग स्पष्ट प्रतिपादन किया। अतः अन्य भारतीय दर्शन सम्प्रदायों की भांति इस जगत के दुःखों से अत्यन्त विराम पाना ही बौद्ध धर्म का भी लक्षण है। भारत का तत्वज्ञान, आशावादी है, वह दुःख बहुल जगत के वास्तव स्वरूप के समझने में वयक्त है। इससे उद्धार पाने के उपायों के निरूपण वह अपनी समग्र शक्तियां व्यय कर देता है, जिससे निराशामय जगत में आशा का संचार होता है, क्लेश का श्रोत आनन्द के रूप में परिणत हो जाता है। जिस व्यक्ति ने मनुष्यों, पुरोहितों, देवताओं तथा स्वयं ईश्वर की सहायता के बिना भी कल्याण का सम्पादन केवल अपनी ही शक्ति पर निर्भर होना बतलाया है। मनुष्य की स्वतंत्रता, स्वावलम्बन तथा महता का प्रतिपादन बौद्ध धर्म की महती विशेषता है।

बौद्ध धर्म में तीन मौलिक सिद्धांत हैं : – (1) सर्वमनित्यम्— सब कुछ अनित्य है, (2) सर्वमनात्मम—समग्र वस्तुएं आत्मा से रहित है, (3) निर्वाण शान्तम्—निर्वाण ही शान्त है। इन तथ्यों के अनुशीलन तथागत की धर्म की विशिष्टता समझने के लिए पर्याप्त होगा। निर्वाण ही ज्ञात है। जगत में दुःख का राज्य है। उसकी निवृत्ति ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। काम और तृष्णा से जगत का उदय होता है। तृष्णा आदि क्लेशों का मूल अविधा है। जब तक "अविधा" का नाश नहीं होता, दुःख की निवृत्ति नहीं उपजती। इसके लिए आवश्यकता है

“प्रज्ञा” की। शील, समाधि, प्रज्ञा—वे बुद्ध धर्म में तीन रत्न हैं। प्रज्ञा का उदय निर्वाण का साधन है इस प्रकार बुद्ध ने जगत के दुःखमय जीवन से निवृत्ति पाने के लिए “निर्वाण” को शांति बतलाया है।

संदर्भ ग्रंथों की सूची

चारों वेद (ऋग्वेद आदि)

बोधायण धर्म – सूत्र